भाषा जो बच्चे घर से लेकर आते हैं...

मदन मोहन पाण्डेय

सभी बच्चे अपने घर में बोली जाने वाली भाषा सहज रूप से सीख जाते हैं। यह घरेलू भाषा ही होती है जो उनको अपने अनुभवों को नाम देने, उनको महसूस करने, उन्हें अभिव्यक्त करने, उन्हें संशोधित करने का ज़रिया बनती है और इस तरह अनुभवों को विस्तार देने का काम भी यही भाषा करती है। बच्चे इसी भाषा के साथ स्कूल में प्रवेश लेते हैं, लेकिन स्कूल में न तो इस भाषा के लिए जगह होती है और न ही बच्चे की इन योग्यताओं के लिए जिन्हें बच्चे ने अपनी इस घरेलू भाषा के माध्यम से अर्जित किया है। लेख बच्चों की अपनी भाषा और उनके द्वारा इसमें अर्जित भाषाई योग्यताओं के विभिन्न उदाहरण देते हुए कहता है कि बच्चे की इन बुनियादी भाषाई योग्यताओं,चाहे ये मौखिक ही क्यों न हों, इन्हें दरकिनार कर, उन्हें भाषा सीखने-सिखाने की बात करना उचित नहीं है। सं.

प्राथमिक कक्षाओं में प्रवेश लेने वाले बच्चे कितनी भाषा जानते हैं? इस सवाल के विभिन्न जवाब आ सकते हैं। लेकिन इस बात को सभी मानते हैं कि उनके पास उनकी मौखिक मातृभाषा तो स्कूल आने से पहले ही मौजूद होती है। अतः स्कूल का यह दावा कि बच्चे स्कूल में ही भाषा सीखते हैं, वह ही उन्हें भाषा सिखाता है कुछ कमज़ोर पड़ जाता है।

सैद्धान्तिक स्तर पर अब यह भी स्वीकार लिया गया है कि हर भाषा खुद में सम्पूर्ण है– चाहे उसे कितने ही कम लोग बोलते हों। प्रत्येक भाषा की अपनी ध्वनि और अर्थ की संरचनाएँ होती हैं और यह किसी व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा की तरह ही समृद्ध होती है, उससे कम नहीं। विचार और व्याकरण के वह तत्व जो व्यापक रूप से या लिखित व्यवहार में आने वाली किसी भी भाषा में होते हैं– कम प्रसार वाली / मौखिक भाषा में भी होते हैं– जैसे अर्थ की विभिन्न छटाओं के साथ व्याकरण के तत्व– संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, सकारात्मक, नकारात्मक, प्रश्नवाचक वाक्य, उद्देश्य और विधेय आदि। अतः कोई भी बच्चा किसी भी मातृभाषा / परिवेशीय भाषा के साथ स्कूल आया हो तब तक उसे इनकी समझ और मौखिक उपयोग की क्षमता हासिल हो चुकी होती है।

घर की भाषा की समझ के साथ-साथ उनके पास यह हुनर भी होता है कि वह इसे समय और परिस्थिति के अनुसार आसानी से बदल लेते हैं। वह माता-पिता के साथ हों तो अलग, दोस्तों के साथ खेलते हुए अलग और किसी अजनबी के साथ बात करते हुए अलग तरह की भाषा इस्तेमाल करते हैं। ज़ाहिर है कि अलग-अलग स्थितियों में भाषा के तेवर भी अलग-अलग ही होंगे।

घर की भाषा बनाम स्कूल की भाषा

बच्चे के घर और स्कूल की भाषा यदि एक है तो यह स्कूल में पढ़ना-लिखना सीखने के लिए ज़्यादा मददगार स्थिति है। यदि घर की भाषा स्कूल की माध्यम भाषा से अलग है तो भी

घर की भाषा की 'ज्ञात' संरचना उसे स्कूल की भाषा/भाषाओं को सीखने में मदद देगी। यह कुछ अचरज में डालने वाली स्थिति भी है कि कैसे शहरी-कस्बाई स्कूलों के प्रवासी बच्चे (गढ़वाली, कुमाऊँनी, भोजपुरी, ब्रज, बुन्देली, भाषाई पृष्ठभूमि के) पहली दूसरी कक्षाओं में साथ-साथ गतिविधियाँ करते हुए पढ़ लेते हैं। वह आपस में भाषाई 'एडजस्टमेंट' कर लेते हैं और स्कूल की माध्यम भाषा पर भी एक सीमा तक अधिकार पा लेते हैं। यह तथ्य इस बात की पुष्टि करता है कि सभी भाषाओं में कुछ सार्वजनीन तत्व हैं जो किसी अन्य भाषा को अपनाने में मदद करते हैं। आखिर कोई भी स्कूल, घर की भाषा और स्कूल की माध्यम भाषा के बीच अनुवाद करने का अभ्यास तो बच्चों को नहीं ही कराता।

बच्चे के भाषाई अनुभव और कक्षा में इनकी जगह

बच्चों के पास परिवेशीय भाषा के साथ रेशा-रेशा जुड़ा हुआ अनुभवों का एक गोदाम होता है।

यह अनुभव खाने-पीने, खेलने, खुशी, प्रेम, स्वप्न, खेल-खिलौनों, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, हवा-पानी, आग, रंग, स्पर्श, सामाजिक रिश्तों आदि से सम्बन्धित होते हैं। इनमें से अनेक अनुभवों की व्याख्या का उन्हें मौका मिला होता है और अनेक अव्याख्यायित अनुभव उनकी दीर्घकालिक स्मृति में पड़े हो सकते हैं। कोई स्कूल/शिक्षक बच्चों से बातचीत करे और इन अनुभवों की सूची बनाए तो इनकी तादाद सैकड़ों में जा सकती है। यदि इन अनुभवों पर बातचीत की जाए और इन्हें भाषा में बदला जाए तो भाषा, गणित, पर्यावरण, विज्ञान, समाज विज्ञान सीखने के अनेक सहज-साधारण सूत्र इनसे मिल सकते हैं। इनसे बच्चे के व्यक्तित्व को गढ़ने वाले तत्वों का भी खुलासा हो सकता है। शायद कभी ऐसा हो कि स्कूलों का पहला साल शिक्षक-बच्चों की बातचीत, किस्से-कहानियों-कविताओं-अभिनय, कक्षा के बाहर और भीतर के खेलों, सरल चित्रकारी और क्राफ्ट व छोटे-छोटे भ्रमणों आदि से लबरेज़ रहे। इन अनुभवों को नए सिद्धान्तों की रोशनी में भाषा में बदला जाए। बच्चों के तमाम अनुभवों की इबारत स्कूलों की दीवारों पर दर्ज होती रहें। इन्हीं इबारतों से, इन्हीं दीवारों पर वह पढ़ना-लिखना सीखें, इसी से गणित, परिवेशीय अध्ययन आदि के सूत्र निकलें। ऐसी दीवारों को फिर बहुत सजाने की ज़रूरत शायद न पड़े क्योंकि इन दीवारों पर लिखी इबारतें कम या ज़्यादा रोज़ बदलेंगी। उनके साथ बच्चों के विचारों के फूल खिल रहे होंगे। बाद की कक्षाओं में भी सन्तुलित अनुपात में यह चीज़ें जारी रहें, पर थोड़ा तरीके बदलते रहें। किताबें आएँ, पर धीरे-धीरे और बाद में बच्चों के पढ़ने-लिखने में आत्मनिर्भर होने के साथ।

बच्चों की एक और क्षमता है उनकी कल्पनाशीलता। यह स्कूल आने से पहले ही उनमें विकसित हो चुकी होती है। आमतौर पर हमारी स्कूल प्रणाली उनकी इस ताकत का ख़ास उपयोग नहीं कर पाती। यदि उनकी आपसी बातचीत के टुकड़ों को जमा किया जाए तो पता चलेगा कि वह खुद को मिली जानकारियों / तथ्यों के साथ अपनी कल्पना को दौड़ाते हैं और तथ्यों / घटनाओं के कारणों तक पहुँचने की कोशिश करते हैं।

नवीन - 'मेरे पिताजी मिलिटरी में हैं, वह आसाम में हैं। वह उग्रवादी को मारते हैं।'

कमल - 'क्या उग्रवादी भी मिलिटरी जैसे कपड़े पहनते हैं?'

नवीन - 'पता नहीं।'

सौरभ - 'लेकिन तेरे पिताजी ओसम (ओसामा) बिन लादेन को नहीं मार सकते।'

इस संवाद में बच्चों ने 'आसाम', 'उग्रवादी', 'मिलिटरी', 'ओसामा बिन लादेन' जैसे शब्द उपयोग किए हैं, जो उनके स्कूल के पाठ्यक्रम में नहीं थे। यह बच्चे इन अवधारणाओं के पीछे

मौजूद कार्य-कारण सम्बन्धों को भी नहीं समझते होंगे। इसके बावजूद चूँकि यह शब्द एक सहज बातचीत में उन्हें (किसी स्रोत से) मिले हैं, वह अपनी कल्पना इन शब्दों / अवधारणाओं / तथ्यों के साथ दौड़ाते हैं और बातचीत के ज़रिए इन्हें समझने की कोशिश करते हैं।

खेल और भाषा

बच्चे घर से सामान्य बोलचाल के अलावा कुछ साहित्यिक ढाँचे भी लाते हैं। यह खेल-संवादों, खेल-कविताओं आदि के रूप में होते हैं। चाहे इनमें कोई बड़ा अर्थ न हो लेकिन उनके खेलों का संचालन करने वाले अनेक संकेत छिपे होते हैं। नीचे बच्चों के खेल का संचालन करने वाले दो संवाद दिए गए हैं। इनका भाषाई गठन देखने योग्य है।

एक

कई बच्चे मिलकर इस खेल को खेलते हैं। एक बच्चा आँखें मूँदे खड़ा हो जाता है। बाकी बच्चे विभिन्न स्थानों पर छिप जाते हैं। आँखें मूँदने वाला बच्चा कई प्रश्न करता है। बाकी बच्चे छिपे हुए स्थान से ही जवाब देते हैं। अन्त में आँखे मूँदे बच्चा आँखें खोलकर छिपे साथियों को ढूँढ़ता है।

'आएँ?'
'आओ।'
'कै बजे?'
'अढ़ाई बजे।'
'खट्टा-मिट्ठा?'
'लाल-लाल।'
'पानी लेके?'
'दौड़ आओ!'
'चील चिलौड़िया'
'मछली कौड़िया'
'मोटर से, कि गाड़ी से?'

अन्त में छिपे हुए बच्चे पूछने वाले को बताते हैं कि वह 'मोटर से' आवे या 'गाड़ी से' और पूछने वाला छिपे हुए साथियों को ढूँढ़ता है।

दो

(एक लड़की अपनी सहेलियों के साथ बुढ़िया बनने का अभिनय करती है। बाकी बच्चे उससे सवाल करते हैं। वह सवालों का उत्तर देती जाती है। अन्त में बच्चे उससे चिढ़ाने वाली बात करते हैं। 'बुढ़िया' सबको मारने दौड़ती है। हँसते हुए बच्चे इधर-उधर भागते हैं।)

'ए बुढ़िया, ए बुढ़िया, कहाँ जात हऊ?'
'सुई खोजे'
'सुई खोज के का करबू?'
'थईला सीयब'
'थईला सी के का करबू?'
'पईसा रखब'
'पईसा रख के का करबू?'
'भईंस खरीदब'
'भईंस खरीद के का करबू?'
'दूध दुहब'
'दूध दुह के का करबू?'
'पीयब'
'दूध पी के का करबू?'
'मोटाइब'
'ए बुढ़िया, ए बुढ़िया, तोरे पीठी पर खून बहत है।'
'पोंछ दा'

(खून पोंछने के बहाने बच्चे बुढ़िया की पीठ पर चपत लगाकर भागते हैं। 'बुढ़िया' उन्हें पकड़ने दौड़ती है।)

यह तो हुई खेलों के साथ इस्तेमाल होने वाले सामूहिक और सुगठित भाषा-ढाँचों की बात, जिनकी स्कूल में पढ़ना-लिखना सिखाते हुए कोई पूछ ही नहीं होती। स्कूल आने वाले छह साल के बच्चे मौखिक भाषा में साधारण वाक्यों के साथ तर्क वाक्य भी इस्तेमाल करते हैं। साधारण वाक्यों से आशय है वस्तुओं / कामों का सामान्य वर्णन करने वाले वाक्य, जैसे– 'मेरी बहिन स्कूल में पढ़ती है', 'मेरे पिताजी

सड़क पर काम करते है', 'मेरे पास किताब हैं' आदि। तर्क वाक्यों में दो चीज़ों / स्थितियों का अन्तर व सम्बन्ध बताने वाले, किसी ग़लत धारणा को नकारने और सच को स्पष्ट करने वाले वाक्य आते हैं, जैसे– 'तवा ज़मीन पर है, चूल्हे पर नहीं', 'पेंसिल मेरी है, राजू की नहीं', 'दीदी मुझसे दो साल बड़ी हैं'। बच्चों के पास इन वाक्यों का होना उनके पास कुछ उन्नत मौखिक भाषा स्तर होने का संकेत है। व्याकरण की क्षमताओं की बात पहले ही हो चुकी है, जिसे लेकर घोर चिन्ताएँ व्यक्त की जाती हैं। कोई स्कूल बच्चों की खुद से, घर-परिवेश से अर्जित इस भाषा क्षमता की थाह ले तो उसका आगे का काम आसान ही होगा।

संक्षेप में

बच्चों की मौखिक भाषा क्षमताएँ जो उन्हें परिवेश से मिलती हैं हमें स्कूली भाषा शिक्षण के बारे में निम्नलिखित संकेत देती हैं–

एक

बच्चों की परिवेशीय भाषा और उनके स्कूल से बाहर के अनुभवों को स्कूल एक अनिवार्य टीएलएम के रूप में स्वीकार करे। इसे शुरुआती पढ़ने-लिखने का एक आधार बनाए।

दो

सोचना-विचारना और विचार का उन्नत होना मौखिक भाषा में भी उतना ही सम्भव है, जितना लिखित भाषा के साथ।

तीन

इस आग्रह से भी बाहर निकला जाना चाहिए कि मौखिक भाषा जानने वाला साक्षर नहीं होता (यदि कहीं ऐसा आग्रह है)। स्कूल पढ़ना-लिखना सिखाकर इस साक्षरता का विस्तार भर करता है या यों कहें बच्चे को साक्षरता के एक नए आयाम में दीक्षित करता है।

बच्चों की मौखिक भाषाई क्षमता और स्कूल के बाहर के जीवन अनुभवों को किताबों के ढेर के नीचे दबाकर कोई स्कूल शायद ही उन्हें अच्छा पढ़ना-लिखना सिखा पाए।

मदन मोहन पाण्डेय को स्कूली शिक्षा और शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने का लगभग साढ़े तीन दशकों का अनुभव है। वर्तमान में वे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन देहरादून में कार्यरत हैं।
सम्पर्क : madan.pandey@azimpremjifoundation.org